लेख 1

बच्चों का जीवन और जीवन का स्पंदन

उषा शर्मा*

हर बच्चा अपने आप में पूर्ण जीवन है। वह जीवन का आधार भी है — परिवार के जीवन का, समाज के जीवन का और राष्ट्र के जीवन का भी! जिसका स्वयं का जीवन इतने लोगों के जीवन का आधार है, उसके जीवन की ज़िम्मेदारी उन सभी की तो बनती ही है! जीवन होना और जीवन में स्पंदन होना – दो अलग बातें हैं लेकिन एक-दूसरे के साथ बेहद करीब से जुड़ी हैं। इनका करीने से जुड़ा होना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। अन्यथा जीवन को 'जड़ होने' और 'जड़ बनने' में समय नहीं लगता। हम जब भी शिक्षा की बात करते हैं तो हमारे ज़ेहन में झट से स्कूल और स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की तसवीर घूम जाती है। यह हमारी संकीर्णतावादी सोच का परिणाम है, क्योंकि हमने कभी शिक्षा को स्कूल के दायरे से बाहर और स्कूल से बाहर वाले बच्चों को शिक्षा के संदर्भ में देखने-समझने की कोशिश ही नहीं की! ऐसा नहीं है कि स्कूल और स्कूल के बाहर की दुनिया में बहुत ज़्यादा अंतर मुझे नहीं दिखाई देता– वहीं एक बँधी-बँधाई दिनचर्या, 'अनुशासन', कुछ हासिल करने का 'बोझ', 'बचपन' को तरसते बच्चे, निरर्थक कवायदें जिनसे कुछ भी सार्थक हासिल नहीं होता, आदि। इन सबमें बच्चे बुरी तरह पिस जाते हैं। आइए, एक उदाहण से इसे समझते हैं। जो बच्चे स्कूल में हैं, वे इस बोझ तले दबे चले जाते हैं कि अच्छे अंक हासिल करने हैं, कक्षा में अव्वल स्थान हासिल करना है और जो बच्चे स्कूल से बाहर हैं वे इस बोझ तले दबे हैं कि दो वक्त की रोटी हासिल करनी है, उसका इंतज़ाम करना है, भाई-बहनों के लिए भी, माता-पिता के लिए भी और अपने लिए भी। इसके लिए उसे भी अनेक प्रकार की कवायदें करनी पड़ती हैं। दोनों तरह के बच्चे अपने-अपने जीवन के होने और उसके होने के प्रमाणस्वरूप उस स्पंदन को तरसते हैं जो उनके जीने का आधार है। सुबह से शाम तक कुछ ही कामों को करते-करते कब 'जीवन की साँझ' हो जाती है, पता ही नहीं चलता! इस पर यह 'खतरा' भी बना रहता है कि न जाने यह जीवन भी कब समाप्त हो जाए! बच्चों के साथ आए दिन जिस तरह के 'कृत्य' हो रहे हैं, वे भी अनदेखे नहीं किए जा सकते। इस तरह बच्चों का जीवन और उनके जीवन का स्पंदन भी 'खतरे' में है। बहुत बार ऐसा होता है कि हम बड़े यानी माता-पिता/

* *प्रोफ़ेसर,* प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

अभिभावक, शिक्षक, समाज के सदस्य के रूप में अपनी ज़िम्मेदारियों को सही तरह से निभा नहीं पाते जिसके कारण बच्चों के साथ अन्याय कर बैठते हैं। वे बच्चे हमें लाख समझाना चाहें कि 'ऐसा नहीं, ऐसा हुआ था', उसने ऐसा कहा था/किया था, मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता आदि, आदि। लेकिन हम बड़े बच्चों के प्रति एक बार जो नज़रिया बना लेते हैं, फिर उससे टस से मस नहीं होते। इस अन्याय के कारण बच्चों के जीवन को अनेक बार कई तरह के खतरों में झोंक देते हैं और जब तक यह बात समझ आती है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। ऐसा नहीं है कि हम यह सब जानबूझकर करते हैं, बस यूँ ही अनजाने में ऐसा कृत्य हो जाता है। जिसे सबसे ज़्यादा भुगतना पड़ता है, वह है — बच्चा। बच्चे को अपने जीवन में अनेक प्रकार की विषमताओं से गुज़रना पड़ता है।

सबसे पहले हम अपने समाज की संरचना को ही देख लें — अनेक वर्गों में विभाजित, अनेक जातियों में विभाजित, अनेक भाषाओं में विभाजित और अनेक 'छद्म' अहं में विभाजित! विभाजित संरचना, संगठन में पूर्णता और अखंडता की बात या इच्छा रखना अर्थहीन लगता है। इस संदर्भ में बरबस यह कहावत याद आ जाती है कि 'बोया पेड़ बबूल का, तो आम कहाँ से होय!' आप सोच रहे होंगे कि बच्चों के बारे में बात करते-करते हम 'बड़ों' को क्यों निशाना बनाया जा रहा है! दरअसल सारी समस्या इस बात की है कि हम न तो बच्चों को समझ पाए और न ही उनके मन को। वैसे बच्चों के साथ रहते हुए, उनके साथ काम करते-करते मुझे उनके साथ इस कदर 'मुहब्बत' हो गई है कि जब उनका खयाल रहता है तो फिर 'किसी का' खयाल नहीं रहता। बच्चों के साथ रहते हुए और लगातार काम करते हुए यह भी जाना कि बच्चे हमें पंच विकारों से मुक्त होने में मदद करते हैं। हम उनके स्नेह के मोहपाश में इस तरह बँध जाते हैं कि फिर हर तरह की ईर्ष्या, अहं, लोभ, मोह नहीं रहता, क्योंकि उनके साथ का 'मोह' हमें कहीं 'भटकने' ही नहीं देता...। उनके छोटे-कोमल हाथ जब हमारे हाथ को थामते हैं तो लगता है कि ईश्वर की इस अमूल्य निधि को अपनी मुट्ठी में ही बाँध लें और जब वे अपने इन्हीं छोटे–कोमल हाथों से हमारे गाल को छूते हैं तो फिर समस्त प्रकार के लोभ समाप्त हो जाते हैं। उनका साथ और बिना शर्त प्यार या 'अनकंडीशनल लव' हमें किसी भी 'दुनियावी संपत्ति' से अधिक मूल्यवान लगता है जिसके पाने पर 'सारी दुनिया' मिल जाती है तो फिर 'कुछ और पाने' की न तो चाहत रहती है और न ही महत्वाकांक्षा तो फिर किसी से ईर्ष्या भी नहीं रहती..! उनके बेहद निस्वार्थ भरे स्नेह के सामने सारा अहं भी न जाने कहाँ खो जाता है और उनसे 'बिना गलती' भी 'क्षमा' माँगने का बार-बार जी चाहता है, क्योंकि हम उन्हें, उनकी प्रेम भरी बातों को, उनके मासूम मन के मासूम जादू को किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहते...! बहुत अनोखी दुनिया है बच्चों की! हमें, हम बड़ों को उनकी इस अनोखी दुनिया और उनके जीवन को बचाए रखने में उनकी मदद करनी होगी ताकि हम बच्चों के सान्निध्य में स्वयं को समर्पित कर अपूर्व आनंद ले सकें।

पिछले लंबे समय से बच्चों के स्वभाव और उनकी मूल प्रवृत्ति में बदलाव आ रहे हैं। क्रोध, आलस्य, चिड़चिडापन, ज़िद, झूठ बोलना आदि समस्याएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। पहली कक्षा

Chapters- PS-July2016.indd 6 22-08-2017 AM 10:00:57

की काजल को हर चीज़ दूसरों से छीनकर लेने की आदत है और याशिका को हर बात पर मुँह फुलाने की! पता नहीं क्यों, मुझे याशिका का नाराज़ होना अच्छा लगता है...! शायद इसलिए कि किसी बच्चे के नखरे उठाने का भी अपना एक अलग ही आनंद है। वे रूठते हैं, क्योंकि कोई उन्हें मनाने वाला है! कितनी गहरी बात है और बच्चे इतनी गहरी बात को कितनी सहजता से समझ जाते हैं। अगर इस बात को कोई 'और' न समझ पाएगा तो 'रूठने वाले बच्चों के लिए' दिक्कत हो सकती है। हुआ यूँ कि एक दिन मैंने कक्षा में सभी बच्चों से कहा कि वे अपने-अपने परिवार का चित्र बनाएँ। बच्चों को कागज़ तो मैंने ही दे दिए ताकि वे अपनी कॉपी से कागज़ न फाड़ें। 'वैसे भी उनकी कॉपियों में पन्ने होते ही कितने हैं और जो होते हैं वे बहुत ही कच्चे होते हैं।' फिर मैंने बच्चों से कहा कि जिन बच्चों के पास पेंसिल, रबड़, शार्पनर आदि नहीं हैं वे यहाँ मेज़ पर से ले सकते हैं। 'रंगों का मामला' उतना 'रंगीन' नहीं था जितना मैंने सोचा था। कक्षा के काफ़ी बच्चों के पास रंग नहीं थे और छोटे बच्चों की एक आदत होती है कि वे काम करने से पहले सारे सामान को 'जुटा' लेते हैं फिर काम में मन लगाते हैं। मैंने कक्षा की व्यवस्था का जायज़ा लिया और दो बच्चों के बीच में रंगों का एक डिब्बा रख दिया। इससे बच्चों को चीज़ों की सहर्ष साझेदारी करने की आदत भी पड़ जाएगी। याशिका के पास रंग थे लेकिन फिर भी उसे रंग चाहिए थे। मैंने कहा, 'याशिका आपके पास तो रंग हैं ना! फिर आप वही रंग इस्तेमाल कीजिए।' याशिका की 'नज़रों ने मना कर दिया।' उसने रंग का डिब्बा लेने के लिए हाथ बढ़ाया लेकिन मैंने मना करते हुए रंग पीछे वाली सीट पर बैठे बच्चों को दे दिए– 'जिन्हें रंगों की ज़रूरत थी।' सारी कक्षा अपने-अपने परिवार को 'कागज़ पर उतारने' में लीन थी लेकिन याशिका ने काम करना शुरू नहीं किया। मैंने याशिका से कहा — 'आप काम क्यों नहीं कर रहे?' उसने कोई जवाब भी नहीं दिया और न ही काम शुरू किया। थोड़ी देर बाद याशिका को मैंने अपने पास बुलाया और उसके छोटे-कोमल हाथों को अपने हाथ में लेते हुए कहा — 'आप नाराज हैं याशिका?' उसकी नज़रें नीची ही रहीं और आवाज़ मौन! फिर मैंने उससे कहा — 'तुम्हें बुरा लगा कि मैंने तुम्हें रंग नहीं दिए? सॉरी याशिका! देखो आपके पास तो रंग थे ही। है ना! तो हमें उन बच्चों को रंग देने चाहिए जिनके पास नहीं हैं और आपको भी रहनुमा के साथ अपने रंग बाँटने चाहिए, है ना! अगर तुम्हें रंग चाहिए, तो मेज़ पर से ले लो।' अब याशिका का चेहरा उठा और नज़रें भीं। उसके चेहरे से गुस्सा गायब था। उसने रंग नहीं लिए और अपनी सीट पर जाकर अपने 'परिवार को आकार, रंग-रूप' देना आरंभ किया। रहनुमा भी उसके रंगों से अपने परिवार को 'रंग' रही थी।

एक दिन काजल ने हद ही कर दी। कक्षा में बच्चों की कहानियों, कविताओं की किताबें रखी थीं ताकि बच्चे आनंद के साथ पढ़ सकें। काजल और कावेरी को एक ही किताब पसंद आई — '*लालू और पीलू*'। काजल ने आदत के अनुसार कावेरी के हाथों से वह किताब छीन ली। कावेरी ने कहा कि पहले उसने यह किताब ली है। लेकिन काजल ने अपना 'दम और रौब' दिखाते हुए कहा — 'तो क्या हुआ? मुझे चाहिए

Chapters- PS-July2016.indd 7 22-08-2017 AM 10:00:57

तो चाहिए। तुम कोई और किताब ले लो' यह पहली बार नहीं था जब काजल ने किसी के हाथों से कोई चीज़ छीनी हो। कावेरी ने काजल की शिकायत की। मैंने तुरंत कोई कार्रवाई नहीं की। टन-टन-टन! आधी छुट्टी हो गई थी। काजल खाना ले रही थी कि एक बड़ी क्लास की एक लड़की ने उसके हाथों से पूरी/पूड़ी ले ली। जब काजल ने विरोध जताया तो वह भी उससे दोगुना 'दम और रौब' दिखाने लगी। वह मेरे पास आई शिकायत लेकर! मैंने उससे पूछा, "क्या हुआ? तुम्हें उसका इस तरह से छीनना ठीक नहीं लगा?" उसने कहा — 'हाँ, उसने गलत किया। मेरी पूरी/पूड़ी थी। मैंने ली थी। उसने क्यों छीनी?' 'हाँ, बात तो आप एकदम ठीक कह रही हो काजल! हमें दूसरों से सामान नहीं छीनना चाहिए फिर वह काजल हो या वह लड़की जिसने तुम्हारी पूड़ी छीनी। है ना!'– मैंने संयत भाव से जो समझाना चाहा, वह काजल की समझ में आ गया। दरअसल काजल में एक तरह की खीझ या चिड़चिड़ापन है। वह इसलिए भी है कि उसकी कक्षा-अध्यापिका हमेशा उससे ही कूड़ेदान उठाकर रखने के लिए कहती हैं– जब स्कूल लगता है और जब स्कूल बंद होता है। काजल के मन में भी सवाल बार-बार उठता होगा कि वह ही क्यों? कोई और क्यों नहीं? स्कूल बंद होने पर काजल ने जैसे ही कूड़ेदान को उठाकर रखने की 'पंरपरा' को पूरा करना चाहा तो मैंने उसे मना कर दिया। किसी और से यह 'परंपरा' निभाने के लिए कहा। उस स्कूल में दोपहर को लड़कों का स्कूल लगता था और कूड़ेदान को सुरक्षित रखने के लिए उसे उठा कर रखना पड़ता था काजल ने हैरानी से मुझे देखा फिर कूड़ेदान को देखा। अगले दिन कावेरी और काजल एक साथ कहानी की किताब देख रहे थे।

दोनों ही स्थितियों में बच्चों को तर्क, विश्लेषण या कारण बताते हुए यह बताना अथवा अहसास कराना ज़रूरी है कि जो वे कर रहे हैं—उसमें क्या ठीक नहीं है। बच्चों को कारण बता दिया जाए या फिर उनसे बातचीत करते हुए चीज़ को सही-सही पेश किया जाए तो वे समझ जाते हैं। हम बड़े क्या करते हैं? गलती होने पर बस तुरंत डाँट देते हैं या फिर अच्छा-खासा भाषण 'झाड़' देते हैं—मूल्यों का, सीख का। कई बार जब बड़े बच्चों के साथ कोई 'अन्याय' करते हैं, कोई गलती करते हैं तो बच्चों को भी क्रोध आना स्वाभाविक है। लेकिन वे अपनी बात कह नहीं पाते या उन्हें अपनी बात कहने या अपनी बात रखने का कोई मौका नहीं दिया जाता। सही कारण या तर्क न मिलने पर धीरे-धीरे उनका यह क्रोध और खीझ चिड़चिड़ाहट में बदल जाती है। उनके मन की कोई बात पूरी न होने या मन-मुताबिक काम न होने पर भी अकसर बच्चों में क्रोध की स्थिति देखी जा सकती है। हमें यह समझना होगा कि संवादविहीन स्थिति सभी के लिए घातक है—बच्चों के लिए भी और बड़ों के लिए भी। संवादहीन स्थिति का अर्थ केवल बात न करना ही नहीं है बल्कि जब कोई सार्थक बात न हो तो भी वह एक तरह से संवादहीनता ही है जिसमें केवल बड़े ही बोलते हैं, अपना पक्ष रखते हैं, उपदेश देते हैं, सीख देते हैं... और बच्चों को केवल 'सुनना' ही होता है या फिर उनकी कही गई बात को बहुत ही 'हलके' से लिया जाता है। इस संवादहीनता से हमें बचना होगा और अपने बच्चों को भी बचाना होगा।

Chapters- PS-July2016.indd 8 22-08-2017 AM 10:00:58

बच्चों के स्वभाव में आने वाले परिवर्तनों के सही कारणों को खोजना बेहद ज़रूरी है वरना कहीं ऐसा न हो कि हम 'स्वयं ही कोई गलती कर बैठें!' ऐसा भी होता है जब बच्चे अपनी बात नहीं कह पाते तो उनका क्रोध अपने से किसी छोटे पर या चीज़ों पर निकलता है। कोई तो ज़रिया उन्हें भी चाहिए अपने 'संवेग' की अभिव्यक्ति के लिए! कोई सही तरीका या सलीका न मिले तो 'गड़बड़' हो जाती है। हमें ध्यान रखना होगा कि हम बच्चों के संवेगों की अभिव्यक्ति का कोई बेहतर रास्ता सोच सकें और उन्हें सुझा सकें।

कई बार ऐसा भी होता है कि बच्चों में झूठ बोलने की आदत उन्हें किसी गंभीर स्थिति में फँसा देती है। लेकिन सवाल उठता है कि वे झूठ बोलते क्यों हैं या उन्हें झूठ बोलने की ज़रूरत क्यों होती है? इसका एक जवाब तो 'डर' हो सकता है। संभव है कि उन्हें अपने माता-पिता से डर लगता हो कि वे सही बात बताएँगे तो उन्हें डाँट पड़ेगी। दूसरा जवाब 'संवादहीनता' हो सकता है जिसके बारे में हम पहले चर्चा कर चुके हैं। यह भी हो सकता है कि उनकी 'इच्छाएँ' बेहिसाब बढ़ चुकी हों कि उन्हें पूरा करने के लिए भी उन्हें झूठ का सहारा लेना पड़ता हो। इसमें एक और बात यह भी छिपी है कि उन्हें मालूम है कि उनकी 'इच्छा' वाजिब या उचित नहीं है। किसी के हाथ में 'ब्रैंड न्यू' मोबाइल या फिर 'बाइक' देखी और मन उसी पर लट्टू हो गया! लेकिन घर में कहे कौन? चलो भई कह देंगे कि फलाँ काम के लिए स्कूल में पैसे चाहिए। बस, हो गया काम! लेकिन ऐसा कब तक? कई बार एक सही बात को न कह पाने के कारण या सही बात को छिपाने के कारण जो झूठ बोला जाता है फिर उस झूठ को छिपाने के लिए झूठ बोलने का सिलसिला बढ़ता ही जाता है। इसके लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को विश्लेषण करना सिखाएँ और उनके साथ बैठकर 'बिना तैश में आए' सहजता के साथ बात करें। उन्हें प्यार से और सही तर्क देते हुए सारी स्थिति प्रस्तुत करें और फिर पूछें कि इस स्थिति विशेष में उन्हें क्या सही लगता है। संभव है कि वे आपकी बात को सही तरीके से सोचने की कोशिश करेंगे जैसा कि आप उनकी बात को समझने की कोशिश करते हैं, करते हैं ना! बच्चों के क्रियाकलापों पर भी नज़र रखें कि वे किनके साथ उठते-बैठते हैं, किनके साथ आते-जाते हैं, उनके साथी कौन हैं? कमज़ोर इच्छा शक्ति बहुत जल्दी पतन की राह पर ले जाती है! हमें अपने बच्चों की इच्छा शक्ति को भी मज़बूत करना होगा।

यहाँ बच्चों से जुड़ी बातचीत का सिलसिला निकल ही पड़ा है तो लक्ष्मी और ज्योति की बात किए बिना कुछ 'अधूरा' लगेगा। दोनों बच्चियाँ एक-दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। लक्ष्मी को बोलना ही आता है, बोलना ही भाता है और ज्योति को चुप रहना, अपने में लीन रहना। दोनों बहुत ही अच्छी सहेलियाँ हैं। लक्ष्मी की एक आदत है कि वह कक्षा के हर बच्चे के काम और व्यवहार पर बेबाक तरीके से टिप्पणी करती है। उसने मुझे भी नहीं छोड़ा! मैं कक्षा में हमेशा यह ध्यान रखती थी कि सभी बच्चों को मिड-डे मील (सरकार द्वारा कक्षा आठ तक के बच्चों को स्कूल में भोजन मुहैया कराना) मिल जाए और वे भरपेट भोजन कर लें। एक दिन लक्ष्मी ने मुझे टोक दिया — खुद तो खाना खाती नहीं है, हमसे कहती हैं — अगले दिन से मुझे खाना लाना पड़ा और उनके साथ खाना

Chapters- PS-July2016.indd 9 22-08-2017 AM 10:00:58

खाने की परंपरा शुरू की। लक्ष्मी को यह भी अच्छा नहीं लगता था कि सभी बच्चे मुझसे अपना टिफ़िन और बोतल खुलवाते थे। उसने एक दिन झट से कह दिया– मैडम क्या तुम्हारी नौकरानी लगी है! फिर वह बच्चों को वहाँ से भगा देती। मैं मना करती तो मुझे भी उसकी 'डाँट' खानी पड़ती जैसे आपने इन बच्चों को सिर चढ़ा लिया है और भी न जाने क्या-क्या...! लक्ष्मी की बातें कभी खत्म ही नहीं होती थीं। ज़्यादा बात करने के कारण उसकी एकाग्रता भी बार-बार भंग होती थी। वह उस काम को करने में दिक्कत महसूस करती थी जिसमें उसे एकाग्रचित्त होना पड़ता था। अनेक बार उसकी बातें, अधिक बातें और बिना सोचे-समझे कही गई बातें कक्षा के बच्चों को आहत कर जाती थीं। फिर लक्ष्मी कभी उनके अपमान, उनकी शर्मिंदगी और उनके 'कई' रहस्य खुलने का कारण बनती। बहुत से बच्चे लक्ष्मी की शिकायत करते तो बहुत से बच्चे 'अपने तरीके से' लक्ष्मी से 'निपट' लेते। वहीं ज्योति थी, चुप-चुप सी रहती थी। लगता था कि उसके हिस्से का लक्ष्मी ही बोल लेती है। ज्योति को अनेक तरह की चिंताएँ घेरे रहती हैं, जैसे — लक्ष्मी की मम्मी ने आज खाना नहीं बनाया इसलिए लक्ष्मी आज खाना नहीं लाई, इतनी बार कहने के बाद भी उसकी मम्मी नए रंग नहीं लाई, उसके भाई को झट से सारी चीज़ें मिल जाती हैं, मम्मी आज लेट क्यों हो गई स्कूल आने में, वह अब घर कैसे जाएगी... और भी ना जाने कौन-कौन सी! ये सब बातें कभी-कभी उसके मुँह से सुनने को मिलतीं। बात लक्ष्मी की हो या ज्योति की, दोनों ही स्थितियाँ 'एक्सट्रीम' हैं — अधिक बोलना और अधिक चुप रहना या गुमसुम रहना! दोनों ही स्थितियों का विश्लेषण करें कि ऐसा क्यों है? कई बार दूसरों का ध्यान आकर्षित करने के लिए भी बच्चे ज़्यादा बोलते हैं और धीरे-धीरे यह उनकी आदत बन जाती है। ऐसे बच्चों को एकाग्रता का अभ्यास करवाएँ, अपनी बारी की प्रतीक्षा करने और दूसरों को बोलने का मौका देने के लिए कहें। उन्हें समझाएँ कि उनके द्वारा बोली गई अनेक बातें किसी तरह से भी उपयोगी नहीं हैं। अगर ये ना कही गई भी होतीं तो कोई अंतर नहीं पड़ता। उन्हें किसी ऐसे काम में शामिल करें जिसमें अत्यधिक एकाग्रता चाहिए। उन्हें कुछ मिनट के लिए किसी एक चीज़ पर अपनी नज़रें केंद्रित करने के लिए कहें। शांत होकर बैठने के लिए भी कुछ समय नियत करें। हो सकता है कि बच्चा शुरू-शुरू में ये काम करने में आना-कानी करे, ऐसी स्थिति में स्वयं माता-पिता भी उसके साथ ऐसे बैठें, उसके साथ काम करें। धीरे-धीरे बच्चे में एकाग्रता के साथ काम करने की आदत विकसित होती चली जाएगी। जो बच्चे गुमसुम रहते हैं उनके साथ थोड़ी-थोड़ी बात करना शुरू करें। ज्योति के केस में उसके मन में यह देखें कि वह किसके साथ बात करने में सहज रहती है, क्या बात करने में उसकी रुचि है आदि हो सकता है कि उसके मन मे कोई गहरी बात हो जिसकी वजह से वह अब गुमसुम हो गई है, जबकि पहले वह बोलती थी! एक बार में उसके साथ ज़्यादा बातचीत न करें। अत्यधिक दबाव की स्थिति में उसमें चिड़चिड़ाहट पैदा हो सकती है। उसकी पसंद की चीज़ों के बारे में बातचीत शुरू की जा सकती है। लेकिन किसी भी स्थिति में ऐसा न लगे कि आप 'बात करने के लिए बात कर रहे हैं।' आप उसका विश्वास भी

Chapters- PS-July2016.indd 10 22-08-2017 AM 10:00:58

जीतने की कोशिश कीजिए। गुमसुम रहने वाले बच्चों में कई बार आत्मविश्वास की भी कमी होती है। वे दूसरों के सामने या बड़े समूह के सामने अपनी बात नहीं कह पाते या फिर यह भी हो सकता है कि 'गलत' होने या 'गलती होने' के भय से भी बच्चे बोलने से कतराते हैं। इसलिए सबसे पहले ज़रूरी है कि उनके मन से हर तरह के भय को दूर किया जाए।

कशिश कक्षा में हर समय 'पसरी–सी' रहती है। जब कभी वह काम से 'मुक्ति' पा लेती है तो डेस्क पर सिर टेककर बैठ जाएगी। आधी छुट्टी के समय बाकी बच्चे उछल-कूद कर रहे होते हैं लेकिन कशिश अपनी डेस्क पर ही बैठी रहती है। कभी उसका रूमाल या पेंसिल भी गिर जाए तो इस तरह से उठाती है कि न जाने कितना भारी काम कर रही हो! उसके शरीर में फुर्ती का नामोनिशान नहीं है। बचपन की चंचलता भी नदारद है। अकसर कक्षा के अंतिम पीरियड में उसकी आँखें उनींदी होने लगती हैं। 'कशिश, जाओ– मुँह धोकर आओ। नींद आ रही है क्या?' उसकी मैडम चिल्लाती हैं। दरअसल कशिश में आलस्य है, जो उसे फुर्ती से दूर रखता है। अगर वह सोचे भी कि अब वह नहीं सोएगी तो भी उसे नींद आ ही जाएगी। बच्चों की खाने-पीने की आदतें उनमें आलस्य पैदा करती हैं। खाने में मैदा की अधिक मात्रा भी आलस्य लाती है। फिर वे बच्चे हों या बड़े! हम बच्चों के खान-पान पर ध्यान नहीं देते। बच्चे ने ज़िद की तो उसे पिज़्ज़ा, बर्गर खिला दिया और इस बहाने 'खुद भी खा लिया'। हम बच्चों में जो आदतें विकसित करना चाहते हैं, वे आदतें सबसे पहले हमें अपने भीतर विकसित करनी होंगी।

बच्चों के जीवन और उनके बचपन को बनाए रखने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को, उनके व्यवहार को, उनकी ज़रूरतों और इच्छाओं को ईमानदारी से समझें। उनके व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों पर अपनी नज़र बनाए रखें इसलिए नहीं कि उन्हें डाँटना है, उनमें गलतियाँ खोजनी हैं या उन्हें सीख या उपदेश देना है बल्कि इसलिए कि हम उनकी सही-सही मदद कर सकें। मदद करने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि दरअसल समस्या क्या है, समस्या कहाँ है और उसे कैसे दूर किया जा सकता है। कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं जो उम्र के पड़ाव के अनुसार स्वाभाविक है। उनका आना समस्या नहीं है बल्कि उनका ना आना किसी समस्या की ओर संकेत करता है। बच्चों का शरारत करना, उछल-कूद करना, बाल सुलभ चेष्टाएँ करना समस्या नहीं है बल्कि उनका चुप रहना समस्या है और समय से पहले, अपनी उम्र से पहले बड़ों की तरह 'बात' करना उनकी परिपक्वता, उनके बहुत जल्दी 'मैच्योर' होने को दर्शाता है जो कि एक खतरा हो सकता है। अतः हमें ही बच्चों की दुनिया का हिस्सा होना होगा। मेरा मानना है कि बच्चों के साथ रहते–रहते हम यह सीख सकते हैं कि बच्चों को सँभालना कैसे है? उसके लिए स्वयं हमारे मन के किसी कोने में एक बच्चे का मौजूद होना ज़रूरी है। बच्चों से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं अगर सीखना चाहें तो! मैंने याशिका, काजल, लक्ष्मी, ज्योति, परी, गुनगुन, कशिश, रहनुमा, अलीशा... से बहुत कुछ सीखा है जो उन्होंने या उन जैसे हज़ारों-लाखों बच्चों ने सिखाया वही आपके सामने प्रस्तुत कर दिया! इसमें 'मेरा' कुछ भी नहीं है जो कुछ है सो 'बच्चों' का है...!

Chapters- PS-July2016.indd 11 22-08-2017 AM 10:00:58